4. अंतर्विवेक सिद्धांत—बटलर

हम पिछले दो खंडों में देख चुके हैं कि बौद्धिक अंत:प्रज्ञावादियों ने भावनाओं की उपेक्षा करते हुए मानव-स्वभाव के बौद्धिक पक्ष को तथा नैतिक संवित्तिवाद के समर्थकों ने बुद्धि की उपेक्षा करते हुए मानव-स्वभाव के भावनात्मक पक्ष को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। इसी कारण मनुष्य के स्वभाव के सम्बंध में इन दोनों सिद्धान्तों के समर्थकों का विवेचन नितान्त एकांगी हो गया है और यही उनके सिद्धान्तों का प्रमुख दोष है। मानव-स्वभाव का अधिक व्यापक एवं संतुलित विश्लेषण करके अट्ठारहवीं शताब्दी के एक महान दार्शनिक जोज़ेफ बटलर (1692-1752) ने अपने 'अंतर्विवेक सम्बन्धी सिद्धान्त' द्वारा उक्त दोनों सिद्धान्तों के इस दोष का निराकरण करने का प्रयास किया। दार्शनिक होने के साथ-साथ बटलर निष्ठावान पादरी भी थे, किंतु उन्होंने अपने नैतिक सिद्धान्त को धार्मिक विश्वास अथवा दैवी शक्ति के आधार पर स्थापित नहीं किया। इसके विपरीत उनका नैतिक सिद्धान्त मानव-स्वभाव के विभिन्न पक्षों पर ही आधारित है जिनमें उनके मतानुसार उचित संतुलन स्थापित करना बहुत आवश्यक है। इसी कारण उनका नैतिक सिद्धान्त पूर्ववर्ती सभी अंत:प्रज्ञावादियों के नैतिक सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक व्यापक एवं संतुलित है।' बटलर ने अपने नैतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन दो पुस्तकों 'सरमन्स ऑन ह्यूमन नेचर' तथा 'डिसर्टेशन ऑन दि नेचर ऑफ वर्च्यू' में किया है, जिनमें ईसाई धर्म पर भी उन्होंने विस्तारपूर्वक अपने

विचार व्यक्त किये हैं। अन्य अंतःप्रज्ञावादियों की भांति वे भी हॉब्स के स्वार्थवाद का खंडन करते हैं और यह कहते हैं कि परोपकार भी मनुष्य के लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना आत्मप्रेम। बटलर ने स्वार्थवाद के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक सुखवाद को भी अस्वीकार किया है, क्योंकि उनके मतानुसार मनुष्य प्रत्येक कर्म केवल सुखप्राप्ति की इच्छा से प्रेरित होकर ही नहीं करता। उनका कथन है कि हम वास्तव में प्रत्यक्षतः सुख की इच्छा न करके किसी वस्तु की इच्छा करते हैं और इस इच्छा की तृप्ति के फलस्वरूप हमें सुख प्राप्त होता है, अतः मनोवैज्ञानिक सुखवादियों का यह मत अनुचित है कि हमारे समस्त कर्म केवल सुखप्राप्ति की इच्छा से प्रेरित होते हैं। हम तीसरे अध्याय में मनोवैज्ञानिक सुखवाद तथा स्वार्थवाद के विरुद्ध बटलर की उक्त आपत्ति पर विचार कर चुके हैं, अतः यहां इसका विस्तृत विवेचन अनावश्यक है।

बटलर का मूल सिद्धान्त उनकी इस महत्वपूर्ण मान्यता पर आधारित है कि मानव-स्वभाव के अनेक पक्ष अथवा तत्त्व हैं और मनुष्य के आदर्श जीवन के लिए ये सभी उचित सीमा में आवश्यक एवं वांछनीय हैं। नैतिकता की दृष्टि से बटलर ने मनुष्य के 'आदर्श स्वभाव' की कल्पना की है जिसमें सभी तत्त्वों का उचित स्थान है और कुछ तत्त्व दूसरे तत्त्वों के अधीन रहकर अपना कार्य करते हैं। उनका कथन है कि मनुष्य के इस आदर्श स्वभाव के अंतर्गत उसके स्वभाव के विभिन्न तत्त्वों में वैसा ही पारस्परिक सम्बन्ध होता है जैसा एक संविधान के अन्तर्गत राजा, संसद, न्यायपालिका तथा प्रजा में पाया जाता है—अर्थात् उच्चता और अधीनता की दृष्टि से इन तत्त्वों में एक निश्चित स्वाभाविक तारतम्य होता है। इस पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर ही बटलर ने उन्हें चार वर्गों में विभाजित किया है—विशिष्ट प्रवृत्तियां, आत्मप्रेम, परोपकार तथा अंतर्विवेक। अब क्रमशः इन्हीं चारों पर संक्षेप में विचार किया जाएगा।

1. **विशिष्ट प्रवृत्तियां**—बटलर के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां होती हैं जो उसे किसी विशेष समय पर कोई विशेष कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं। भूख, प्यास, कामेच्छा, स्नेह, सहानुभूति, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, प्रतिशोध, आत्मप्रशंसा की कामना आदि विशिष्ट संवेगों अथवा प्रवृत्तियों के ही उदाहरण हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक विशिष्ट प्रवृत्ति मनुष्य को कोई विशेष कर्म करने के लिए प्रेरित करती है जिसके फलस्वरूप उसकी कोई विशेष तात्कालिक इच्छा पूर्ण होती है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक विशिष्ट प्रवृत्ति का एक निश्चित और क्षणिक उद्देश्य होता है जिसकी पूर्ति के लिए वह मनुष्य को एक विशेष कर्म करने के लिए प्रेरित करती है। उदाहरणार्थ भूख का उद्देश्य भोजन-प्राप्ति, दया का उद्देश्य पीड़ित व्यक्ति का कष्टनिवारण तथा क्रोध का उद्देश्य

विरोधी को कष्ट पहुंचाना है। बटलर के मतानुसार सभी विशिष्ट प्रवृत्तियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग उन विशिष्ट प्रवृत्तियों का है जो मुख्यत: कर्ता के कल्याण से सम्बन्धित हैं और जिनका प्रभाव उसी तक सीमित रहता है। भख प्यास आदि शारीरिक क्षुधाओं को इसी वर्ग में रखा जा सकता है। दूसरा वर्ग उन विशिष्ट प्रवृत्तियों का है जो मुख्यत: दूसरों के सुख अथवा कल्याण से सम्बन्धित हैं या दु:ख पहुंचाकर उन्हें प्रभावित करती हैं। दया, स्नेह, क्रोध, आदि प्रवृत्तियां इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। यह सत्य है कि इन प्रवृत्तियों का अनुभव भी स्वयं व्यक्ति ही करता है, अत: वह स्वयं भी इनसे प्रभावित होता है, किंतु प्रथम वर्ग की प्रवृत्तियों की अपेक्षा इन प्रवृत्तियों का दूसरों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इसी कारण इन प्रवृत्तियों को पृथक् वर्ग में रखा गया है। यद्यपि बटलर के मतानुसार परोपकारात्मक प्रवृत्तियों द्वारा प्रेरित कर्म करने से कर्ता को भी सुख प्राप्त होता है।

बटलर का मत है कि उपर्युक्त दोनों वर्गों की विशिष्ट प्रवृत्तियां आत्मप्रेम तथा परोपकार से भिन्न हैं। यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्रथम वर्ग की प्रवृत्तियों का सम्बन्ध मुख्यत: आत्मप्रेम से और द्वितीय वर्ग की प्रवृत्तियों का सम्बंध मुख्यत: परोपकार से है, किंतु इन विशिष्ट प्रवृत्तियों को आत्मप्रेम तथा परोपकार के समान ही मान लेना उचित नहीं होगा। इसका कारण यह है कि विशिष्ट प्रवृत्तियों का उद्देश्य आत्मप्रेम तथा परोपकार से भिन्न है। विशिष्ट प्रवृत्तियों का उद्देश्य सीमित होता है; वे मनुष्य को उन्हीं कर्मों के लिए प्रेरित करती हैं, जिनसे उसकी क्षणिक इच्छाओं की तृप्ति होती है। इसके विपरीत आत्मप्रेम तथा परोपकार क्रमश: व्यक्ति और समाज के समग्र कल्याण में सहायक कर्मों के लिए ही मनुष्य को प्रेरित करते हैं, अत: उनका उद्देश्य बहुत व्यापक है। विशिष्ट प्रवृत्तियां आत्मप्रेम और परोपकार में सदैव सहायक भी नहीं होतीं, क्योंकि मनुष्य कई बार इनके वशीभूत होकर ऐसे कार्य करता है जो आत्मप्रेम अथवा परोपकार के विरुद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ कभी-कभी मनुष्य अत्यधिक क्रोध, प्रतिशोध, ईर्ष्या अथवा वासना से प्रेरित होकर अनेक ऐसे कार्य करता है जो समग्र रूप से उसके अपने सम्पूर्ण आनंद एवं कल्याण के लिए बहुत घातक सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार पीड़ित व्यक्ति के प्रति आवश्यकता से अधिक सहानुभूति अथवा दया के कारण मनुष्य उसका बहुत अहित कर सकता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विशिष्ट प्रवृत्तियां आत्मप्रेम और परोपकार से भिन्न हैं।

परंतु बटलर का मत है कि मनुष्य के नैतिक जीवन के लिए इन विशिष्ट प्रवृत्तियों का भी पर्याप्त महत्त्व है, क्योंकि ये आत्मप्रेम और परोपकार में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

2. **आत्मप्रेम और परोपकार**—जैसा कि ऊपर बताया गया है, बटलर के मतानुसार विशिष्ट प्रवृत्तियों के अतिरिक्त आत्मप्रेम और परोपकार भी मानव-स्वभाव के नैसर्गिक तत्त्व हैं और उसको अनेक कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं। आत्मप्रेम का संबन्ध मनुष्य के अपने सुख तथा हित से है जबकि परोपकार का सम्बन्ध दूसरों के सुख से होता है। बटलर आत्मप्रेम को भावनात्मक न मानकर बौद्धिक ही मानते हैं, क्योंकि उनके विचार में यह मनुष्य को ऐसे कर्म करने के लिए प्रेरित करता है जो उसके क्षणिक सुख में सहायक न होते हुए भी समग्र रूप से उसके कल्याण में सहायक सिद्ध होते हैं। जब कोई व्यक्ति क्रोध, ईर्ष्या, घृणा वासना आदि विशिष्ट प्रवृत्तियों पर उचित नियंत्रण न रखते हुए कोई कर्म करता है तो वह आत्मप्रेम के विरुद्ध कार्य करता है। इसका कारण यह है कि ऐसा कर्म अंततः उसके अपने कल्याण के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। स्पष्ट है कि मनुष्य की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां उसके आत्मप्रेम के विरुद्ध होती हैं, अतः स्वयं अपने समग्र कल्याण को ध्यान में रखते हुए उसके लिए इन विशिष्ट प्रवृत्तियों को नियंत्रित करना बहुत आवश्यक है। इन विशिष्ट प्रवृत्तियों को भलीभांति नियंत्रित न कर पाने के कारण ही मनुष्य अनेक बार स्वयं अपने हित के विरुद्ध कार्य करता है। आत्म-प्रेम का बुद्धिमूलक तत्त्व मनुष्य को इस प्रकार का नियंत्रण करने की दिशा में प्रेरित करता है।

परन्तु जैसा कि पहले बताया गया है, स्वार्थवादियों के विपरीत बटलर आत्म-प्रेम के साथ-साथ परोपकार को भी मानव स्वभाव का नैसर्गिक तत्त्व मानते हैं और उसे अनेक मानवीय कर्मों की प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। बटलर ने परोपकार की कोई स्पष्ट और निश्चित परिभाषा नहीं दी। यह कहा जा सकता है कि मनुष्य में दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करने की जो स्वाभाविक इच्छा होती है उसे ही वे 'परोपकार' की संज्ञा देते हैं। उनका कथन है कि यदि मनुष्य में मैत्री, स्नेह, दया, सहानुभूति आदि प्रवृत्तियां हैं तो यह समझना चाहिए कि उसमें परोपकार की स्वाभाविक वृत्ति विद्यमान है। इस कथन से स्पष्ट है कि बटलर दूसरों के कल्याण से सम्बन्धित मनुष्य की समस्त विशिष्ट प्रवृत्तियों को परोपकार के अंतर्गत मानते हैं। परन्तु सी.डी.ब्रोड का मत है कि परोपकार के सम्बन्ध में बटलर की यह मान्यता उचित नहीं है क्योंकि परोपकार मूलतः बौद्धिक होने के कारण स्नेह, मैत्री, दया आदि विशिष्ट प्रवृत्तियों से भिन्न है। परोपकार से प्रेरित होकर मनुष्य समाज के व्यापक कल्याण के लिए प्रयास करता है, ऐसी स्थिति में उसे व्यक्ति विशेष के कष्ट के फलस्वरूप उत्पन्न दया से भिन्न मानना ही उचित होगा। बटलर के विरुद्ध ब्रोड की उक्त आपत्ति युक्तिसंगत ही प्रतीत होती है। इसका कारण यह है कि बटलर ने परोपकार की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार

परोपकार तथा कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों में कोई अंतर नहीं रह जाता जबकि स्वयं बटलर ने परोपकार को विशिष्ट प्रवृत्तियों से भिन्न माना है। वस्तुतः परोपकार के विषय में बटलर का मत उतना स्पष्ट और निश्चित नहीं है जितना विशिष्ट प्रवृत्तियों तथा आत्मप्रेम के सम्बन्ध में। यह कहा जा सकता है कि बटलर के मतानुसार आत्मप्रेम और परोपकार दोनों ही बौद्धिक एवं नियामक तत्त्व हैं जो क्रमशः वैयक्तिक तथा सामाजिक विशिष्ट प्रवृत्तियों को नियंत्रित करते हैं। उचित सीमा के न रहने पर आत्मप्रेम और परोपकार भी मनुष्य के संतुलित नैतिक जीवन के लिए उसी प्रकार अवांछनीय हैं जिस प्रकार अनियंत्रित विशिष्ट प्रवृत्तियां। स्पष्ट है कि बटलर के मतानुसार मनुष्य के नैतिक आचरण तथा आनंदमय जीवन के लिए विशिष्ट प्रवृत्तियों की भांति आत्मप्रेम और परोपकार का भी उचित सीमा में ही महत्त्व है।

3. **अन्तर्विवेक**:—बटलर का मत है कि मनुष्य में विशिष्ट प्रवृत्तियों, आत्म-प्रेम तथा परोपकार की भांति अंतर्विवेक भी है जो उसे अनुचित कर्मों से दूर रहने तथा उचित कर्म करने के लिए निरन्तर प्रेरित करता है। आत्मप्रेम और परोपकार की भांति अंतर्विवेक भावनात्मक न होकर मूलतः बौद्धिक है। यह मानवीय कर्मों की सर्वोच्च नियामक प्रेरक शक्ति है। अंतर्विवेक आत्मप्रेम तथा परोपकार को उसी प्रकार नियंत्रित करता है जिस प्रकार ये दोनों विशिष्ट प्रवृत्तियों को नियंत्रित करते हैं। स्पष्ट है कि बटलर के विचार में नैतिक आचरण के निर्धारण की दृष्टि से आत्मप्रेम तथा परोपकार की अपेक्षा अंतर्विवेक का अधिक महत्त्व है। अंतर्विवेक ही कर्मों के औचित्य तथा अनौचित्य का अंतिम निर्णय कर सकता है, आत्मप्रेम अथवा परोपकार नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि आत्मप्रेम तथा परोपकार में होने वाले संघर्ष का अंतिम निर्णय अंतर्विवेक ही कर सकता है और यदि इन दोनों का अथवा इनमें से किसी एक का अंतर्विवेक के साथ संघर्ष हो तो अंतर्विवेक का निर्णय ही अंतिम रूप से उचित एवं मान्य होगा। दूसरे शब्दों में, यदि आत्मप्रेम तथा परोपकार किसी कर्म को अनुचित बताते हैं और हमारा अंतर्विवेक उसे उचित मानता है तो हमें वह कर्म अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार बटलर के मतानुसार मनुष्य के कर्मों की समस्त प्रेरक शक्तियों में अंतर्विवेक की ही सर्वोच्च सत्ता है। कर्मों के औचित्य तथा अनौचित्य के विषय में अंतर्विवेक जो निर्णय करता है वे बाह्यारोपित न होकर वास्तव में मनुष्य के अपने ही निर्णय होते हैं, अतः इन निर्णयों के विरुद्ध कभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

बटलर का मत है कि अंतर्विवेक के मुख्य दो पक्ष होते हैं—ज्ञानात्मक तथा अधिकारात्मक। अपने ज्ञानात्मक पक्ष द्वारा यह मनुष्य के कर्मों तथा उनके मूल में निहित प्रयोजनों पर औचित्य एवं अनौचित्य की दृष्टि से विचार करता है।

अन्तर्विवेक ही हमारे उचित और अनुचित कर्मों के साथ क्रमशः आनन्द तथा दुःख के अनिवार्य सम्बन्ध को स्वीकार करता है—अर्थात् यह बताता है कि हमें अपने उचित कर्मों के लिए आनन्द तथा अनुचित कर्मों के लिए दुःख प्राप्त होना चाहिए। परन्तु अंतर्विवेक कर्मों के औचित्य तथा अनौचित्य का निर्णय मनुष्य के स्वभाव, चरित्र एवं परिस्थितियों के अनुसार ही करता है। यही कारण है कि हमारा अंतर्विवेक बालक, पागल तथा स्वस्थ व्यक्ति द्वारा किए गए एक ही कर्म के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न निर्णय देता है। अंतर्विवेक द्वारा हमें औचित्य-अनौचित्य का साक्षात् ज्ञान होता है, जो अंतःइन्द्रिय संवेदनों अथवा तर्क पर आधारित नहीं होता। इसीलिए बटलर का सिद्धांत अंतःप्रज्ञावाद का एक रूप माना जाता है।

अंतर्विवेक का दूसरा पक्ष अधिकारात्मक है जिसका सम्बन्ध मानव स्वभाव में उसकी सर्वोच्च स्थिति से है। बटलर का अभिप्राय यह है कि हमारे लिए अंतर्विवेक का आदेश ही कर्म को करने अथवा न करने का उचित एवं पर्याप्त कारण है। जब हमारा अंतःकरण हमें यह आदेश देता है कि अमुक कर्म उचित अथवा अनुचित है तो इस आदेश के अतिरिक्त उक्त कर्म को करने अथवा न करने के लिए हमें अन्य किसी कारण की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार बटलर के विचार में हमारा अंतर्विवेक ही किसी कर्म को अपने आप में उचित या अनुचित घोषित करता है और हमारे लिए इस कर्म को करने अथवा न करने का यही पर्याप्त कारण है। परन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया है कि नैतिक दृष्टि से सर्वोच्च स्थिति में होते हुए भी अंतर्विवेक इतना शक्तिशाली नहीं है कि वह सदैव मनुष्य से अपने आदेशों का पालन करा सके। हम कई बार अत्यधिक आत्मप्रेम अथवा परोपकार के कारण अंतर्विवेक के आदेशों के विरुद्ध कार्य करते हैं। परन्तु बटलर का मत है कि इससे अन्तर्विवेक के सर्वोच्च नैतिक अधिकार में कोई अन्तर नहीं पड़ता। पर्याप्त सीमा तक शक्तिशाली न होते हुए भी अंतर्विवेक ही नैतिक दृष्टि से हमारा स्वाभाविक तथा वास्तविक मार्गदर्शक है—वही हमें बताता है कि कौन-सा कर्म हमारे लिए उचित है और कौन-सा अनुचित। बटलर के मतानुसार नैतिक दृष्टि से अंतर्विवेक की सर्वोच्चता के लिए किसी बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, उसकी नैतिक सर्वोच्चता स्वाभाविक और स्वतःप्रमाणित है। संक्षेप में, बटलर सभी मानवीय वृत्तियों में अंतर्विवेक को नैतिक अधिकार और मार्गदर्शन की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान देते हैं, इसी कारण उनके सिद्धांत को 'अंतर्विवेक' का सिद्धांत भी कहा जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बटलर का नैतिक सिद्धांत उनसे पूर्ववर्ती अन्य सभी अंतःप्रज्ञावादियों के सिद्धांतों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक तथा संतुलित है। स्वार्थवाद तथा मनोवैज्ञानिक सुखवाद के विरुद्ध बटलर ने जो

आपत्तियां उठाई हैं उन्हें आज भी बहुत-से दार्शनिक स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार मानवीय कर्मों की प्रेरक शक्तियों का उन्होंने जो विश्लेषण किया है वह युक्तिसंगत प्रतीत होता है। उनका यह मत निश्चय ही मान्य है कि मनुष्य के नैतिक आचरण तथा आनन्दमय जीवन के लिए उचित सीमा में विशिष्ट प्रवृत्तियां आत्मप्रेम और परोपकार सभी बहुत आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने ठीक ही कहा है कि सीमा में न रहने पर ही ये व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण में बाधक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार बटलर का यह सिद्धांत मनुष्य का नैतिक मार्ग-दर्शन करने में पर्याप्त सीमा तक सहायक हो सकता है।

परन्तु इन सभी गुणों के होते हुए भी बटलर के नैतिक सिद्धान्त को पूर्णतया दोष रहित एवं संतोषजनक नहीं माना जा सकता। इसका कारण यह है कि बटलर ने मनुष्य में अंतर्विवेक की जो कल्पना की है और उसका जो स्वरूप तथा अधिकार बताया है उसे पूर्ण रूप से स्वीकार करना बहुत कठिन है। बटलर जिसे अंतर्विवेक कहते हैं उसके विरुद्ध लगभग वैसी ही आपत्तियां उठाई जा सकती हैं जैसी शेफ्ट्सबरी तथा हचिसन द्वारा प्रतिपादित नैतिक संवित्ति के विरुद्ध उठाई गई हैं। सर्वप्रथम अंतर्विवेक सम्बन्धी मान्यता नैतिक निर्णयों की वस्तुनिष्ठता को समाप्त करके उन्हें पूर्णतः व्यक्तिनिष्ठ बना देती है। इसका कारण यह है कि अंतर्विवेक मूलतः वैयक्तिक है; ऐसी स्थिति में इस पर आधारित नैतिक निर्णय वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ ही हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि बटलर के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाय तो नैतिक निर्णयों से सम्बन्धित भूलों को नही सुधारा जा सकता और इन निर्णयों के विषय में मतभेद की भी युक्तिसंगत व्याख्या नहीं की जा सकती। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति का अंतर्विवेक क्रूर तथा अन्यायपूर्ण कर्म को उचित कहता है तो उसके इस कर्म को अनुचित सिद्ध करने के लिए कोई तर्क नहीं दिया जा सकता। हिटलर यह मानता था कि वह इस पृथ्वी से यहूदियों का अस्तित्व मिटाने के लिए अपने अंतर्विवेक के आदेशानुसार ही कार्य कर रहा है। वस्तुतः सभी अत्याचारी इसी आधार पर अपने क्रूर एवं अन्यायपूर्ण कर्मों को उचित सिद्ध करने का प्रयास करते रहे हैं। स्पष्ट है कि मनुष्य के किसी कर्म को केवल इसीलिए उचित नहीं माना जा सकता कि वह उसके अंतर्विवेक के आदेशानुसार किया गया है। इसके अतिरिक्त यदि दो व्यक्तियों के अंतर्विवेक परस्पर विरोधी आदेश देते हैं तो यह निर्णय करना असम्भव है कि इनमें से किसके अंतर्विवेक का आदेश नैतिक दृष्टि से उचित एवं मान्य है। यदि एक ही कर्म को मोहन का अंतर्विवेक उचित और श्याम का अंतर्विवेक अनुचित कहता है तो बटलर के सिद्धांत के आधार पर इनमें से किसी एक के अंतर्विवेक के आदेश को उचित और दूसरे के अंतर्विवेक के आदेश को अनुचित सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। ऐसी स्थिति

में यह कहना अनुचित न होगा कि उनका सिद्धांत कर्मों के औचित्य तथा अनौचित्य के सम्बन्ध में कोई युक्तिसंगत आधार प्रस्तुत नहीं करता। वस्तुत: बटलर जिसे अंतर्विवेक कहते हैं वह कोई विशेष नैतिक शक्ति न होकर पारिवारिक तथा सामाजिक वातावरण द्वारा प्राप्त मनुष्य के कुछ संस्कार हैं जो इस वातावरण के परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो सकते हैं और होते हैं। विभिन्न समयों में भिन्न-भिन्न मनुष्यों के अंतर्विवेकद्वारा एक ही कर्म को उचित तथा अनुचित मानने का मूल कारण यही संस्कारपरिवर्तन है। अंतर्विवेक सम्बन्धी इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए यही कहा जा सकता है कि मनुष्य के अंतर्विवेक को उसका एकमात्र उचित मार्गदर्शक नहीं माना जा सकता जैसा कि बटलर मानते हैं; परन्तु इन कठिनाइयों के होते हुए भी बटलर का अंतर्विवेक सम्बन्धी सिद्धान्त एक सीमा तक उचित एवं युक्तिसंगत है।